THE TIMES OF INDIA

Date: 03-04-17

# Meat under attack

## *Authorities must not encourage food bigotry or harass legitimate businesses*

Last week Gujarat adopted a draconian law against cow slaughter, making it punishable with a 14-year jail term. This is on the heels of a clampdown on abattoirs in UP. Over in the Jharkhand capital, licenses of mutton and chicken shops haven't been renewed. Voices are growing from Hindutva organisations in Rajasthan, Chhattisgarh, Uttarakhand, Madhya Pradesh and other BJP-ruled states for a blanket closure of meat shops. Taken together there are worrying signs of a rise in food bigotry, cow vigilantism, harassment of legitimate meat businesses and competitive fundamentalism.

It's important to note that cow slaughter was banned in all these states even before the current NDA government took office. Gujarat for example had imposed a complete ban not just on slaughtering but also on transporting cow and progeny in 2011. Today if it were simply a matter of improving the implementation of all laws, incidentally including such bans, it wouldn't necessarily be such an adverse development. A clampdown on illegal slaughterhouses would be welcome if it meant a more modern, compassionate and hygienic meat industry.

Unfortunately this is not the message that goes out when Gujarat chief minister Vijay Rupani says he wants to make Gujarat vegetarian, his government decrees veritable life sentences and Chhattisgarh chief minister Raman Singh talks of hanging those who kill cows. Or when legitimate UP enterprises that account for over half of India's $5 billion worth of buffalo meat exports are threatened. It's not just precious foreign exchange but lakhs of jobs that are at stake in an economy characterised by jobless growth. Even if one wants to institute bans on cow slaughter, this cannot be equated to the taking of a human life. Such conflations amount to religious fundamentalism which will breed conflict and violence – Pakistan next door is a good example of how it plays out. The vigilantism and violence seen from Dadri to Una could now get worse, endangering social stability and harmony.Some months ago Prime Minister Narendra Modi had come down heavily on such vigilantes, calling out the majority of 'gau rakshaks' as anti-socials who proclaim themselves cow protectors only to cover up their misdeeds. Yet, in conflicting signals, legitimate meat businesses are suffering and non-vegetarianism is facing an aggressive Hindutva attack. Both Centre and BJP-ruled states need to send a more coherent message, about respecting individual liberties and protecting legal businesses.

---

THE ECONOMIC TIMES

Date: 03-04-17

# Not all 'shell companies' have shady business

The threat of arbitrariness and excess hangs over Indian business today, after the Finance Bill has armed junior taxmen with discretionary powers of search and seizure and with the ongoing crackdown on shell companies.The term shell companies is loaded: some nefarious intent or the other is implied by its very

nomenclature. All companies without an operational business are not meant for ulterior purposes. One company's purpose, for example, could be to accumulate shares in a takeover target, without triggering an open offer till the relevant threshold is reached, fully in compliance with the law.Another could be used to hold intellectual property licensed to companies around the world. Yet another's purpose might be to hold a company meant to be spun off after meeting some financial targets. There are any number of legitimate purposes for creating and operating socalled shell companies.The reform that is required to prevent such companies from being used to anonymise undesirable transactions is a mandatory requirement for companies to declare their beneficial owner, on the lines of the reform brought about by the David Cameron government in Britain.The G20 has been trying to get member countries and other jurisdictions to adopt the requirement of a unique legal entity identifier. If all companies and persons have a unique identifier, like Aadhaar for Indian residents, the beneficial ownership can be traced along a hierarchy of holding and cross-holding companies.

If a company is identified as carrying out money laundering, say, the beneficiary of that activity would become apparent, if such a reform is carried out. The point is to separate illegal transactions from the corporate structure in which it is carried out and to penalise illegality, not damn the corporate structure that has a great many legitimate uses.Paradoxically, the twin reforms of anonymous electoral bonds and removing an existing cap on corporate donations to political parties encourages the setting up of shell companies for the specific purpose of funding parties.

---

बिज़नेस स्टैंडर्ड

***Date: 03-04-17***

# बैंकों के फंसे कर्ज की समस्या के हल में हैं राजनीतिक पेच

माना जाता है कि देश के वित्तीय क्षेत्र की गड़बडिय़ों ने दो खास चुनौतियों को जन्म दिया है जो एकदूसरे से संबंधित हैं। एकतरफ जहां फंसे हुए कर्ज की समस्या ने बैंकों की वित्तीय हालत खराब कर रखी है तो दूसरी और ढेर सारी कंपनियां ऐसी हैं जिन पर कर्ज का बोझ बढ़ता ही जा रहा है। खासतौर पर बुनियादी क्षेत्र की कंपनियां कर्ज में डूबी हैं और उनको इससे निपटने में खासी तकलीफ का सामना करना पड़ रहा है।इसे भारतीय अर्थव्यवस्था की बैलेंसशीट की दोहरे घाटे की समस्या कहा जाता है।

भारतीय कंपनियों का कर्ज में डूबा होना उनकी हालत को कमजोर तो करता ही है, साथ ही देश में निवेश के माहौल पर बुरा असर डालता है। बैंकिंग क्षेत्र की सेहत पर इसके नकारात्मक असर से हर कोई वाकिफ है। जब तक ये समस्याएं हल नहीं हो जाती हैं तब तक निवेश और वृद्धि में स्थायी सुधार मुश्किल है। फंसे हुए कर्ज की चुनौती से निपटने का एक तरीका है उन परियोजनाओं के प्रवर्तकों के खिलाफ उचित कदम उठाए जाएं जिनको ऋण दिया गया है। इससे निवेश का माहौल बेहतर होगा। साथ ही बैंकों को भी पुराने फंसे हुए कर्ज से निजात मिलेगी और वे नया ऋण देने पर विचार करेंगे। ये बातें सभी लोग जानते हैं। इस पर चर्चा हो चुकी है। इस सिलसिले में कई योजनाएं भी पेश की गई हैं लेकिन कुछ खास प्रगति नहीं हो सकी। देश की कंपनियां जस की तस कर्ज में डूबी हैं। देश के बैंक, खासतौर पर सरकारी बैंक इस समस्या में डूबे हैं। उन्होंने भी तमाम योजनाएं पेश कीं लेकिन सब बेकार। इस बीच सरकार और रिजर्व बैंक की नई योजना से उम्मीद जग रही है। यह योजना इस समस्या से निदान पाने का प्रयास करेगी। सरकार को अंदाजा है कि इन बैंकों के प्रबंधन अपनी ऋण पुस्तिका सुधारने के अनिच्छुक हैं। वे खराब

ऋण को रियायत पर बेचने या ऋण न चुका पाने वाले प्रवर्तकों की परियोजनाओं की बिक्री की इच्छा नहीं रखते। नई योजना आरबीआई की मदद लेने की है ताकि वह कानूनन यह सुनिश्चित करे कि बैंक प्रबंधन कड़े फैसले लेकर अपना कर्ज कम करें। ऐसा करते हुए उनको कानून प्रवर्तन एजेंसियों या जांच का कोई डर भी नहीं होगा।

नई नीति के सफल होने की संभावनाएं हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि यह पहला मौका है जब केंद्रीय बैंक से नियामकीय भूमिका निभाने को कहा जा रहा है। कुछ अस्पष्टï वजहों से अब तक सरकार यह उम्मीद कर रही थी कि केवल केंद्रीय बैंक की कुछ योजनाओं की मदद से फंसे कर्ज से निपटने के इस लक्ष्य को हासिल किया जा सकता है। लेकिन वह उपाय काम नहीं आया। अब केंद्रीय बैंक से कहा जा रहा है कि वह अधिक सक्रिय भूमिका निभाकर देनदारी चूकने वालों, बढ़ते कर्ज और फंसे हुए कर्ज से निपटने के कदम उठाए। अब बैंकों को तेजी से कदम उठाने होंगे। ऐसे कदम फंसी हुई संपत्ति की नीलामी, देनदारी चूकने वालों पर जुर्माने आदि की दिशा में बढ़ सकते हैं। इस पहल का नेतृत्व आरबीआई के हाथ रहेगा।यह कदम राजनीतिक दृष्टिï से भी समझदारी भरा नजर आ रहा है। नरेंद्र मोदी सरकार बैंकों के फंसे हुए कर्ज के मुद्दे पर इसलिए हड़बड़ी नहीं दिखा रही थी क्योंकि उसे डर था कि ऐसे किसी कदम को कारोबारियों के हित में माना जा सकता था। उसने वर्ष 2013 के भूमि अधिग्रहण और पुनर्वास विधेयक में बदलाव की कोशिश की थी तो उस पर ऐसे ही आरोप लगे थे कि वह कारोबारियों की मदद के लिए ऐसा कर रही है। तब सरकार को अपना कदम वापस लेना पड़ा। मोदी सरकार को 'सूटबूट की सरकार कहकर पुकारा गया।

तब से अब तक सरकार ऐसे कदम उठाने से बचती रही है जिनको कारोबारियों या अमीरों का मददगार माना जा सकता है। यही वजह है कि बड़ी कंपनियों के लिए निगमित कर की दर में प्रस्तावित कटौती अभी घोषित नहीं की गई है। इसके बजाय सालाना 50 लाख रुपये से अधिक आय वाली कंपनियों के लिए दर बढ़ा दी गई है। जबकि इस अवधि में कम आय वाले वर्ग की दरें कम की गई हैं। इसी तरह सरकार बैंकों के फंसे हुए कर्ज के मोर्चे पर भी सामने नहीं आना चाहती थी क्योंकि यह कदम भी कारोबारियों के हित में जाता दिखेगा। ध्यान देंगे कि फिलहाल जिस कदम की बात की जा रही है वह आरबीआई के अधीन उठाया जाएगा। ऐसे में सरकार सामने नहीं आएगी।

इसका उसके लिए गलत राजनीतिक परिणाम नहीं होगा। लगभग ऐसी ही राजनीतिक वजहों से ही वित्तीय क्षेत्र की दूसरी चुनौती का भी कोई शीघ्र हल निकलता नहीं दिख रहा है। यह चुनौती सरकारी बैंकों की कमजोर वित्तीय सेहत से जुड़ी है। फंसे हुए कर्ज के निपटान से इन बैंकों की कुछ मदद होगी लेकिन उनमें से कई वित्तीय स्तर पर इतने अधिक कमजोर हैं कि उनको अहम बदलाव की आवश्यकता है। इसके लिए उनका एक बेहतर बैंक में विलय किया जा सकता है या ऐसे बैंक को बंद किया जा सकता है। दुर्भाग्यवश सरकार द्वारा फिलहाल ऐसी कोई योजना शुरू करने की संभावना अत्यंत कम है। जिन तीन सरकारी बैंकों की हालत सबसे खस्ता है वे सभी पश्चिम बंगाल के हैं। राज्य में तृणमूल कांग्रेस का शासन है। भाजपा आने वाले दिनों में यहां अपनी छाप छोडऩा चाहती है और ऐसे में बैंक बंद करने के फैसले से बड़ी तादाद में लोग बेरोजगार होंगे। यह निर्णय केंद्र सरकार की लोकप्रियता पर असर डालेगा और तृणमूल कांग्रेस को अवसर देगा कि वह अपने समर्थकों को भाजपा के खिलाफ भड़का सके। ऐसे में मोदी सरकार वहां इस तरह के कदम उठाने से बचेगी। लब्बोलुआब यह कि आरबीआई के नेतृत्व में होने वाली पहल देश के कारोबारी क्षेत्र के लिए मददगार हो सकती है और उसका कुछ बैंकों पर भी सकारात्मक असर होगा। परंतु वित्तीय रूप से कमजोर सरकारी बैंकों की समस्या बनी रहेगी और उनमें पूंजी डालने से कोई हल नहीं निकलने वाला।

***Date: 03-04-17***

# न्यायपालिका में हो न्याय और दूरदर्शिता का मेल

चूंकि मैं अक्सर राजनीति जैसे नीरस विषय पर बात करते समय क्रिकेट का जिक्र कर बैठता हूं तो मैं यह इजाजत चाहता हूं कि न्यायपालिका पर टिप्पणी करते समय फिल्म संगीत को बीच में ला सकूं। खासतौर पर तब जबकि मैं यह आलेख फिल्म गीतकार आनंद बख्शी की पुण्यतिथि के अवसर पर लिख रहा हूं। जब मैं न्यायपालिका और आनंद बख्शी के दौर के बारे में एकसाथ सोचता हूं तो मुझे सन 1969 में अशोक कुमार-जितेंद्र-माला सिन्हा अभिनीत फिल्म 'दो भाई में लिखा उनका गीत याद आता है। इस फिल्म में अशोक कुमार और जितेंद्र भाई बने थे। दोनों भाइयों में एक न्यायाधीश तो दूसरा पुलिसकर्मी है। आगे की कहानी का अंदाजा लगाया जा सकता है। न्यायाधीश इस दुविधा का शिकार रहता है कि अपने भाई को दंडित करे या नहीं। इस फिल्म में आनंद बख्शी के लिखे एक गीत को मोहम्मद रफी ने आवाज दी थी। गीत के बोल थे: इस दुनिया में ओ दुनिया वालों, बड़ा मुश्किल है इंसाफ करना, बड़ा आसान है देना सजायें, बड़ा मुश्किल है पर माफ करना।

संपादक के जीवन में भी ठीक वही दलील लागू होती है जो न्यायाधीश के जीवन में। किसी खबर को प्रकाशित करना और उसकी आलोचना सहना आसान है, बजाय कि न छापकर चीजों को स्पष्ट करते रहने के। कोई असावधान संपादक ही होगा जो एक रोचक खबर को सिर्फ इसलिए नहीं छापेगा क्योंकि वह उस पर पूरी तरह तरह भरोसा नहीं कर पा रहा होगा। मैं यहां जिस खबर की बात करने जा रहा हूं उसका संबंध देश के मुख्य न्यायाधीश से है। यह सन 1998 की सर्दियों की बात है। अगर मैं 20 साल बाद भरोसा तोड़ रहा हूं और कुछ समझदार और माननीय व्यक्तियों के नाम ले रहा हूं तो वे मुझे माफ कर देंगे क्योंकि वे इसके पीछे की वजहों को भी समझेंगे। हमारे विधिक संपादक उस वक्त देश के मुख्य न्यायाधीश बने ए एस आनंद के अतीत को लेकर एक अत्यंत सावधानीभरी खोजी रपट कर रहे थे। इस रपट से एक ऐसे न्यायाधीश की तस्वीर उभर रही थी जो काम में पूरी सावधानी नहीं बरतता था, हितों के टकराव की अनदेखी करता था, जो तोहफों को लेकर पारदर्शी नहीं था और जो अपने खेत में बुआई करने वाले साझे की खेती करने वालों के साथ लेनदेन में अपारदर्शी था। हमने इस खबर की शृंखला प्रकाशित करने के पहले छोटी से छोटी सावधानी बरती और संपादन के दौरान अनेक बदलाव किए।

यह खबर इतनी बड़ी थी कि इसे लेकर मैंने देश के शीर्षस्थ 10 वकीलों से मशविरा किया। इसके प्रकाशन को लेकर उनके विचार अलग-अलग थे। दो का मानना था कि इसे प्रकाशित होना चाहिए जबकि आठ इसके खिलाफ थे। हालांकि प्रकाशन रोकने की वजहें प्राय: तथ्यात्मक और विधिक नहीं थी। बस कहा जा रहा था कि हमें देश के सबसे महान संस्थान को यूं नुकसान नहीं पहुंचाना चाहिए। जिन दो लोगों ने कहा कि रपट प्रकाशित होनी चाहिए उनमें से एक का कहना था कि तथ्य तो तथ्य हैं और कोई दूसरी दलील यहां नहीं लगनी चाहिए। जबकि दूसरे सज्जन अत्यधिक उत्साहित थे। मैंने उनसे पूछा कि न्यायाधीश महोदय क्या करेंगे? हम पर अवमानना का मुकदमा चलाएंगे? उस अधिवक्ता ने जवाब दिया कि नहीं वह ऐसा कुछ नहीं करेंगे बल्कि वह आत्महत्या कर लेंगे। उनके जवाब ने हमें हिलाकर रख दिया। अनजाने में ही सही इस बात ने हमारा ध्यान दोबारा देश की न्याय व्यवस्था के अहम पहलू की ओर खींचा। हमने एक बार फिर एक-एक पंक्ति को दोबारा पढ़ा। एक बात की कमी थी: इसमें खुद न्यायमूर्ति आनंद की प्रतिक्रिया शामिल नहीं थी। हमने जब भी कुछ पूछने का प्रयास किया उनके कार्यालय ने कहा कि चूंकि वह देश के मुख्य न्यायाधीश हैं इसलिए वह मीडिया से बात नहीं कर सकते। हमारे पास उनकी ओर से यही जवाब था। तब दो ऐसे लोगों से मेरी बात हुई जिनका मैं अत्यधिक सम्मान करता हूं। ये लोग थे सुषमा स्वराज और अरुण शौरी। दोनों वाजपेयी सरकार में मंत्री थे। दोनों न्यायमूर्ति आनंद और उनके परिवार को लंबे समय से जानते थे और उनका कहना था कि उन्हें भरोसा नहीं कि आनंद ने किसी तरह की बेईमानी की होगी। मैंने उन्हें बताया कि हमारी खबर में दम है और हम पहले ही लंबा इंतजार कर चुके हैं, अब इस खबर को रोक कर रखना संभव नहीं होगा। अगर हमारी बातें गलत हैं तो न्यायमूर्ति आनंद को यह बात हमें समझानी होगी। सुषमा स्वराज ने कहा कि मैं न्यायमूर्ति आनंद को फोन करूं। मैंने ऐसा ही किया और वह मुझसे मिलने को तैयार हो गए। यह एक अनौपचारिक मुलाकात थी।

आगे का किस्साकोताह यह कि वह मुझसे थोड़ी शंका-थोड़ी गर्मजोशी से मिले। हमने कई घंटे साथ बिताए और हर आरोप पर बात की। उनके पास चमड़े का एक बैग था जिसमें तमाम दस्तावेज, कर रिटर्न, कुछ अस्पष्ट लिखावट वाले लेख, धान की बिक्री की रसीदें, बच्चों की शादी के आमंत्रण, इन शादियों में मिले शगुन के पैसे के बारे में अदालत और कर विभाग को दी गई जानकारियां थीं। मैं उनके बताए तथ्यों के साथ वापस आ गया। इसके बाद तमाम बार आना-जाना हुआ। ऐसा लगा कि उनके पास मुझे आश्वस्त करने के लिए काफी कुछ है। केवल एक बात ऐसी थी जिसका कोई लेखाजोखा नहीं था। यह मामला कई साल पहले की छह बोरी धान का था जिसका दाम शायद एक साझे की खेती करने वालों को शायद नहीं दिया गया हो। उस वक्त भी इसका दाम शायद 3,000 या 4,000 रुपये से अधिक नहीं रहा हो। यह भी संभव है कि वह हिसाब-किताब की चूक रही हो। मैं निराश होकर लौटा। हमें लग रहा था कि हमारे पास बड़ी खबर है जबकि पूरे तथ्य जानने के बाद कुछ नहीं बचा था। भला छह बोरी धान के घपले के नाम पर देश के मुख्य न्यायाधीश की क्या आलोचना की जाती?

मैं उम्मीद करता हूं कि इस घटना के जिक्र के लिए न्यायमूर्ति आनंद मुझे क्षमा कर देंगे। उन्होंने मुझसे कहा कि अब सभी तथ्य आपके सामने हैं। मैं भारत का मुख्य न्यायाधीश हूं और आप द्वारा उठाए गए हर प्रश्न का जवाब दे चुका हूं। क्या अब भी आप न केवल मुझे बल्कि इस महान संस्थान को आहत करने वाला कदम उठाएंगे? मैं एक बार फिर यह भरोसा तोडऩे के लिए उनसे क्षमा मांगता हूं लेकिन मैंने देखा उनकी आंखे नम हो गई थीं। वह खबर नहीं छपी। मैंने अपने करियर में जो सर्वाधिक कठिन फैसले लिए यह उनमें से एक था।

अगर यही घटना किसी राजनेता या नौकरशाह से जुड़ी हो तो भी क्या हम इतनी ही उदारता का परिचय देंगे? हमने इतना इंतजार केवल इसलिए किया क्योंकि यह मामला एक ऐसे संस्थान के मुखिया से जुड़ा था जिसका हम सब बहुत सम्मान करते हैं। न्यायालय हमारे देश का सबसे भरोसेमंद संस्थान है। सालाना ईडलमैन-डब्ल्यूईएफ सर्वेक्षण से पता चलता है कि सरकारों पर भरोसा इस समय ऐतिहासिक रूप से निचले स्तर पर है। जॉली एलएलबी-2 में न्यायाधीश बने सौरभ शुक्ला कहते हैं कि देखिए यह अदालत कितनी गंदी है। मेरा हर सुबह यहां आकर काम करने तक का मन नहीं करता। सोचता हूं शाम के 6 बजें और घर जाऊं।

लेकिन यह याद रखिए कि जब भी दो लोग आपस में उलझते हैं तो वे एक दूसरे से यही कहते हैं कि आपको अदालत में देखूंगा। ऐसा इसलिए क्योंकि लोगों को लगता है कि जब कभी अन्याय होगा तो अदालत न्याय करेगी। इन वजहों के चलते भी हमारी शीर्ष न्यायपालिका को गहरे आत्मावलोकन की आवश्यकता होगी ताकि उसके इस उच्च कद को बरकरार रखा जा सके। क्या कार्यपालिका के काम में समय-समय पर हस्तक्षेप करने से ऐसा हो पाएगा? क्या नाराजगी दिखाने, और गुस्से और खीझ का प्रदर्शन करने से यह पूंजी बचेगी? सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की अधिकार प्राप्त समिति बनाकर क्रिकेट, अवैध निर्माण या वायु प्रदूषण के मुद्दे हल कराना कैसा काम है? स्वयंसेवी संगठन विधि सेंटर फॉर लीगल पॉलिसी के मुताबिक सर्वोच्च न्यायालय से सेवानिवृत्त होने वाले 70 फीसदी न्यायाधीश सरकारी पंचाट में जगह पा जाते हैं या वे किसी न्यायिक समिति का हिस्सा बन जाते हैं। क्या इस पर बहस नहीं होनी चाहिए? मैं इस बात का समर्थक हूं कि न्यायाधीशों की सेवानिवृत्ति की उम्र 70 वर्ष की जाए। उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के लिए 62 और उच्चतम न्यायालय के लिए 65 वर्ष की सेवानिवृत्ति की आयु वाकई कम है। लेकिन क्या किसी सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश को राज्यपाल बनाया जाना सही है? कोई भी मुद्दा इतना संवेदनशील नहीं कि उस पर बहस न हो सके।

***Date: 03-04-17***

# राज्यों की फिसलन

नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली केंद्र सरकार की एक सफलता तो एकदम स्पष्टï है। उनके कार्यकाल में केंद्र की राजकोषीय स्थिति में सुधार हुआ है। लेकिन यह फायदा भी मोटे तौर पर गंवा दिया गया। राज्य इस मामले में केंद्र के साथ कदमताल नहीं कर सके। कुछ वर्षों की लगातार कमी के बाद राज्य स्तर पर राजकोषीय स्थिति बदली है। व्यय में इजाफे के बावजूद राजकोषीय घाटा बढ़ा है। एचएसबीसी रिसर्च ने उन 16 राज्यों के बजट का विश्लेषण किया जो देश की कुल अर्थव्यवस्था के 85 फीसदी के बराबर हैं। कुलमिलाकर इन राज्यों का राजकोषीय घाटा वर्ष 2016-17 में जीडीपी के 2.8 फीसदी के स्तर पर रहा जबकि बजट अनुमान में 2.6 फीसदी के स्तर की बात कही गई थी। यह वर्ष 2011-12 से 2013-14 तक के 2 फीसदी के घाटे के स्तर से 80 आधार अंक ज्यादा है।

राजकोषीय मोर्चे पर कमजोर रिकॉर्ड चकित करता है क्योंकि केंद्र सरकार की ओर से राज्यों को होने वाला हस्तांतरण चौदहवें वित्त आयोग के प्रभावी होने के बाद लगातार बढ़ा है। केंद्र को अप्रत्याशित कर संग्रह के कारण साझा करने के लिए उसके पास और भी राशि है जबकि वर्ष के दौरान उसने राज्यों के साथ गैर कर राजस्व भी अधिक साझा किया। इतना ही नहीं परिमाण के अलावा केंद्र सरकार के स्थानांतरण ने एकीकृत फंड के घटक में तब्दीली पैदा की है। यह वह राशि है जो राज्य अपनी मर्जी के मुताबिक खर्च कर सकते हैं। इससे बंधे हुए फंड की राशि बढ़ी। सवाल यह है कि यह गिरावट आई कैसे? विश्लेषण यह बताता है कि राजस्व संग्रह में कमी नहीं आई है, हालांकि राज्य अपने कर राजस्व में पहले के मुकाबले पिछड़े हैं। स्टाम्प शुल्क और तेल उत्पादों पर राज्यों का वैट कमजोर रहा। लेकिन इसकी भरपाई केंद्र की ओर से अतिरिक्त राजस्व से हो गई। असली समस्या उच्च व्यय की वजह से उत्पन्न हुई। इससे भी बुरी बात यह है कि व्यय में बढ़ोतरी केवल और केवल मौजूदा उच्च व्यय की वजह से हुई। जबकि इस दौरान पूंजीगत व्यय में कमी आई। इस तरह का व्यय सबसे अधिक चिंता करने वाला है। वर्ष 2017-18 के लिए एक बार फिर राजकोषीय घाटे के जीडीपी के 2.6 फीसदी के बराबर रहने का अनुमान जताया गया। लेकिन तीन घटनाएं ऐसी हैं जिनकी वजह से यह एक बार फिर दबाव महसूस करेगा। सातवें वेतन आयोग के कारण वेतन के बोझ में होने वाला इजाफा जीडीपी के 0.20 फीसदी के बराबर हो सकता है। यह राशि मौजूदा प्रावधान के ऊपर होगी। वहीं उज्ज्वल डिस्कॉम एश्योरेंस योजना (उदय) को बॉन्ड की मदद से वित्त पोषित किया जा रहा है और ब्याज की बदौलत राज्यों को जीडीपी के 0.05 फीसदी तक का बोझ वहन करना पड़ सकता है। आखिर में, कई राज्यों में इस वित्त वर्ष के आखिर में चुनाव होने हैं। इसका भी व्यय पर असर होगा।

लेकिन 2.8 फीसदी के स्तर पर भी यह दलील दी जा सकती है कि राज्यों का राजकोषीय घाटा राजकोषीय जवाबदेही एवं बजट प्रबंधन (एफआरबीएम) द्वारा तय तीन फीसदी की सीमा के भीतर ही है। यह तर्क भी किया जा सकता है कि केंद्र सरकार का बेहतर राजकोषीय प्रदर्शन समग्र घाटे को नियंत्रण में रखेगा। अगर राज्य और केंद्र सरकार के प्रतिफल के बीच का अंतर यूं ही बढ़ता गया तो इससे राज्यों का ब्याज का बोझ बढ़ेगा और उनके व्यय की गुणवत्ता कमजोर होगी। गौरतलब है कि यह दीर्घावधि के 50 आधार अंक के औसत की तुलना में फिलहाल 80 आधार अंक है। अगर राज्य इस रुझान में बदलाव कर पाते हैं तो बेहतर होगा।

Date: 03-04-17

# खुसरो से सीखें भारत भक्ति

वंदे मातरम को लेकर एक और बार विवाद उभरा है। जाहिर है कि इसके पीछे कुछ मुसलमानों का वही पुराना एतराज है कि इस्लाम कथित तौर पर उन्हें दे मातरम के गायन की इजाजत नहीं देता। लगता है कि ये वही लोग हैं जो अमीर खुसरो जैसी शख्सियत की भारत भक्ति से परिचित नहीं। 1192 में पृथ्वीराज चौहान की पराजय के परिणामस्वरूप भारत में मुस्लिम सत्ता की स्थापना हुई। इसके करीब 61 साल बाद 1253 में अमीर खुसरो का जन्म हुआ।उनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति और देश के प्रति जैसा प्रेम दिखाई पड़ता है वैसा कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। खुसरो यह समझता था कि साथी मुसलमानों को उसकी भारत की भक्ति अच्छी नहीं लगेगी। इसलिए अपने ग्रंथ नुह-सिपिर में उसने तर्कपूर्वक अपनी भारत भक्ति पर काफी जोर दिया, जिससे मुसलमानों के सभी भ्रम और संदेह समाप्त हो सकें और वे स्वयं को भारत की संतान मान सकें। खुसरो का कहना था कि यदि कोई मुझसे यह पूछे कि भारत के प्रति मैं इतनी श्रद्धा क्यों रखता हूं तो मेरा उत्तर होगा, क्योंकि भारत मेरी जन्म भूमि है और यह मेरा अपना देश है। मुसलमानों की दुविधापूर्ण स्थिति को दूर करने के लिए कुरान का हवाला देकर खुसरो ने लिखा कि खुद पैगंबर ने कहा है कि अपनी जन्मभूमि और देश का प्रेम व्यक्ति के धर्म-प्रेम में सम्मिलित है (हब अल-वतन मिन अल-ईमान)। खुसरो का मानना था कि पृथ्वी पर यदि कहीं स्वर्ग है तो वह हिंदुस्तान में है। उसने लिखा है कि यद्यपि ईरान, चीन और यूनान स्वयं को दुनिया की दूसरी सभ्यताओं से बेहतर मानते हैं, किंतु यह उनकी गलत धारणा है।

उसने यह प्रमाणित करने की चेष्टा की कि हिंदुस्तान से बेहतर दुनिया का कोई दूसरा मुल्क नहीं है। स्वर्ग हिंदुस्तान में ही क्यों है, इसे साबित करने के लिए उसने अनेक कारण गिनाए। खुसरो ने भारत की आबोहवा, समृद्धता, सहिष्णुता, उदारता आदि विशेषताओं का उल्लेख करते हुए लिखा कि मध्य एशिया से भारत आने वाली मुस्लिम लड़ाकू जातियों को वहां कठोर सर्दी में अपना जीवन बिताना पड़ता है। इसके विपरीत भारत की संतुलित जलवायु में एक गरीब व्यक्ति भी खुले आसमान के नीचे रहकर आनंद से जीवन बिता सकता है। उसने उन मुसलमानों का सौभाग्यशाली बताया जिन्होंने भारत को अपना देश बनाया। खुसरो के विवरण से पता चलता है कि उसके समय में हिंदुस्तान दुनिया के सबसे अग्रणी देशो में था।उस दौर में यहां कवि, संगीतज्ञों और विभिन्न विद्याओं में पारंगत ज्ञानियों की संख्या अनगिनत थी। ज्ञान प्राप्त करने के लिए भारतीय विद्या केंद्रों पर विदेशों से तमाम लोग आते थे, किंतु भारतवासियों को बाहर जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। खुसरो भारत की विविधतापूर्ण संस्कृति से भली भांति अवगत था। भारतीय संगीत की प्रशंसा करते हुए उसने लिखा कि दूसरे मुल्कों की तुलना में वह बहुत उच्च कोटि का है। हिंदुस्तानी संगीत पर केवल यहां के मनुष्य ही नहीं झूमते, हिरण भी स्तब्ध हो जाते हैं, बकरियां संतुलन का खेल दिखाने लगती हैं और पक्षी भी गाने लगते हैं। खुसरो ने अनेक रागों की भी रचना की। खुसरो के समय मुस्लिम अपनी रचनाएं फारसी और हिंदू अपभ्रंश भाषाओं में लिखते थे। जनता की भाषा न अपभ्रंश थी न फारसी। खुसरो वह पहला व्यक्ति था जिसने प्रचलित जनभाषा में रचना करके हिंदी और उर्दू के भविष्य की राह खोल दी। उसे खड़ी बोली हिंदी और उर्दू, दोनों ही भाषाओं का पिता माना जा सकता है।

खुसरो ने सबसे बड़ा काम यह किया कि सल्तनत की सांप्रदायिक नीतियों को दरकिनार करते हुए भारत के प्रति अद्भुत भक्ति प्रकट की। जिस परंपरा को उसने स्थापित किया उसी को जायसी, कबीर, रहीम, रसखान और दाराशिकोह ने संवर्धित किया। कवि दिनकर ने लिखा है कि यदि हिंदुस्तान ने खुसरो को अपने आदर्श मुसलमान के रूप में पेश किया होता तो हिंदुस्तान की कठिनाइयां बहुत कुछ कम हो जातीं। यह दु:ख की बात है कि अमीर खुसरो की परंपरा आज विलुप्त सी दिखाई पड़ती है। इस्लामी संसार में निरंतर चल रही हिंसा का प्रभाव भारत पर भी पड़ना स्वाभाविक है, किंतु यह कहने में संकोच नहीं कि तमाम कमियों के बावजूद यहां उदारवाद की लंबी परंपरा होने के कारण आशा की किरणों

समाप्त नहीं हुई हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि भारत का मुसलमान तमाम इस्लामी मुल्कों की तुलना में काफी उदार है और यही कारण है कि भारत का माहौल अलग है। इसके विपरीत पड़ोसी देश पाकिस्तान के बलूचिस्तान प्रांत में हजारों शिया मुसलमान मारे जा रहे हैं।

अहमदिया मुसलमानों की भी हत्या की जा रही है। इस्लाम के नाम पर उग्रवादियों ने गैर-मुस्लिमों को ही नहीं तमाम मुस्लिम समुदायों के अस्तित्व को खतरे में डाल दिया है। इसी तरह सउदी अरब में वहाबी सुन्नियों ने सत्ता में शियाओं की भागीदारी समाप्त कर दी है। असली इस्लाम क्या है, इसका दावा ठोंकने वाले सुन्नी, शिया, वहाबी, सलाफी, देवबंदी, अहमदिया, सूफी सभी आपस में झगड़ रहे है। एक मुस्लिम गुट दूसरे मुस्लिम गुट को विधर्मी मान रहा है। एक खुला युद्ध छिड़ा हुआ है। किसलिए और किसके विरूद्ध छेड़ा जा रहा है, शायद यह किसी भी गुट को पता नहीं। भारत की मिट्टी में ही कुछ ऐसा है कि जमालुद्दीन अफगानी जैसे मुस्लिम विचारक ने, जो साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए सर्व इस्लामवाद का नारा देकर दुनिया के मुसलमानो को एक करना चाहता था, भारत के मामले में अपना विचार बदला।भारत के मुसलमानों के लिए उसका संदेश था कि वे हिंदुओं के साथ मिलकर राष्ट्रीय एकता स्थापित करें। कलकत्ता मेंमुस्लिम युवाओं को संबोधित करते हुए उसने कहा था कि भारत के मुस्लिम नौजवानों को अपनी भारतीय विरासत पर गर्व करना चाहिए। साम्राज्यवाद के विरूद्ध लड़ने के लिए अन्यत्र तो वह सर्व इस्लाम की बात कर रहा था, किंतु भारत के हिंदुओं और मुसलमानों, दोनों से एक-दूसरे के साथ कंधे से कंधा मिलाकर साम्राज्यवाद के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए कह रहा था। भारत में वह सिर्फ पांच वर्ष (1877-82) तक रहा था। दुनिया में जेहादी कट्टरता और हिंसा को समाप्त करने के लिए आज जरूरत है उदारवादी मुस्लिम नेतृत्व की। अमीर खुसरो, रहीम और दाराशिकोह के मुल्क में उदारवादी परंपरा अभी समाप्त नहीं हुई है, लेकिन आखिर कट्टरपंथ और आतंकवाद के विरूद्ध लड़ने के लिए भारत का उदारवादी मुसलमान चुप क्यों है? इस्लाम को आतंकी हिंसा से जोड़कर उसे बदनाम करने वालों के विरूद्ध आम मुसलमान क्यों नहीं बोलता?

भारतीय मुस्लिम से आशा की जाती है कि वह अमीर खुसरो की परंपरा का निर्वाह करते हुए इस्लाम को बदनाम करने वाले कट्टरपंथियों के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए उदरवादी सोच के साथ आगे बढ़े। इस्लाम को बदनाम करने वालों से इस्लाम की रक्षा उदारवादी आम मुसलमान ही कर सकता है। उसे आगे आने का साहस दिखाना होगा। यह खेद की बात है कि देश की राजधानी दिल्ली में जहां कई क्रूर मुस्लिम बादशाहों के नाम पर तमाम सड़कें हैं वहां भारतीय राष्ट्रीयता के प्रतीक अमीर खुसरो,दारा शिकोह आदि को भुला सा दिया गया है।

***(लेखक उदय प्रकाश अरोड़ा जेएनयू में ग्रीक चेयर प्रोफेसर रहे हैं)***

---

***Date: 03-04-17***

# कालेधन की कंपनियां

कालेधन के खिलाफ मुहिम के तहत प्रवर्तन निदेशालय की ओर से चुनिंदा शहरों में तीन सौ से अधिक दिखावटी कंपनियों के यहां छापेमारी यही बताती है कि किस तरह वैध कारोबार करने की आड़ में अवैध काम किए जा रहे हैं। छापेमारी की चपेट में आईं कंपनियों के बारे में संदेह है कि नोटबंदी की घोषणा के बाद उनमें बड़े पैमाने पर कालेधन को खपाया गया। इनमें से कई कंपनियों पर यह भी शक है कि उन्होंने पैसा विदेश भेजा। इस छापेमारी से यह भी पता चल रहा है कि प्रधानमंत्री के बार-बार चेताने के बावजूद किस तरह उद्योग-व्यापार जगत के कुछ लोग कालेधन के कारोबार से बाज नहीं आ रहे हैं। सबसे लज्जाजनक यह है कि चार्टर्ड एकाउंटेंट जैसे सम्मानित पेशे के लोग इस गोरखधंधे को खाद-पानी दे रहे हैं। जब करीब एक दर्जन शहरों में ही तीन सौ से अधिक दिखावटी कंपनियां कालेधन का कारोबार करती दिखीं तो फिर यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि देश भर में ऐसी कितनी कंपनियां होंगी? पिछले साल संसद में दी गई एक जानकारी के अनुसार

आयकर विभाग ने एक हजार से अधिक ऐसी कंपनियों को चिह्नित किया था जिन पर 13 हजार करोड़ रुपये से अधिक कालेधन को सफेद करने का संदेह था। यदि देश का उद्योग-व्यापार जगत अपनी प्रतिष्ठा के लिए तनिक भी चिंतित है तो उसे दिखावटी कंपनियों के जरिये नियम-कानूनों को धता बताकर कालेधन को सफेद बनाने की प्रवृत्ति का परित्याग करना होगा। यह जरूरी है कि उद्योग-व्यापार जगत अपने बीच की काली भेड़ों को अलग-थलग करने के साथ ही उनकी पहचान भी करे, क्योंकि गलत काम कुछ लोग करते हैं और बदनामी के दाग सब पर लगते हैं।

नि:संदेह केवल इतने से संतुष्ट नहीं हुआ जा सकता कि प्रवर्तन निदेशालय तीन सौ संदिग्ध कंपनियों की छानबीन करने में लगा हुआ है। यह ठीक नहीं कि वैध कारोबार करने के नाम पर कोई भी आसानी से कंपनी खोल ले और फिर उसके जरिये कालेधन को सफेद करने का काम करने लगे। सरकार और उसकी एजेंसियां इससे अनभिज्ञ नहीं हो सकतीं कि यदि वे डाल-डाल हैं तो कालेधन के कारोबारी पात-पात। वे नियम-कानूनों को ठेंगा दिखाने और सरकारी तंत्र को गुमराह करने में माहिर हो चुके हैं। कई बार कालेधन खपाने का जरिया बनीं कंपनियों के बारे में भनक तब लगती है जब वे बड़े पैमाने पर हेरफेर कर चुकी होती हैं। यह गंभीर बात है कि ऐसी कंपनियां केवल टैक्स चोरी का ही जरिया नहीं हैं। वे आपराधिक तरीके से अर्जित किए गए धन को खपाने का माध्यम भी हैं। एक समस्या यह भी है कि आयकर विभाग से लेकर प्रवर्तन निदेशालय की कार्यप्रणाली कोई बहुत भरोसा नहीं जगाती। आखिर ऐसे कितने मामले हैं जिनमें प्रवर्तन निदेशालय कालाधन खपाने वाली फर्जी कंपनियों के संचालकों को सजा दिलाने में कामयाब रहा? भले ही आयकर विभाग या फिर प्रवर्तन निदेशालय की कार्रवाई से जनता को यह संदेश जाता हो कि कालेधन वालों पर शिकंजा कस गया, लेकिन वास्तव में ऐसा मुश्किल से ही होता है। बेहतर हो कि सरकार अपने उन सभी विभागों की कार्यप्रणाली को प्रभावी और साथ ही विश्वसनीय बनाए जिनके जरिये कालेधन के खिलाफ मुहिम जारी है।